औषधी विवरण पुस्तिका

वर्षा ऋतु विशेषांक

Aushadhi Vivaran Pustika 2018

वर्षा ऋतु में विसर्ग काल की शुरुआत होती है, तो आदान काल का अंत होता है। वर्षा ऋतु यह विसर्ग काल अर्थात् दक्षिणायन का पहला ऋतु है। वाग्भटाचार्यजीने वर्षा ऋतु की शारीरिक स्थिति का वर्णन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

आदानग्लानवपुषामग्नि: सन्नोऽपि सीदति।
वर्षासु दोषै:।। अ. हृ. सू. ३/४२

आदान काल में पहले से ही अग्निमांद्य उत्पन्न हुआ रहता है। स्वभावत:ही मनुष्य थक जाता है। वर्षा ऋतु में वातादि दोष प्रकोप के कारण व्यक्ति का उदरस्थ अग्नि मंद हो जाता है। वर्षा ऋतु के अग्निमांद्य के कारण अन्नवह, रसवह एवं पुरीषवह स्रोतस् की दुष्टि होती है। अन्नवह स्रोतस् दुष्टि के कारण अग्निमांद्य, अजीर्ण, अम्लपित्त, छर्दि एवं उदरशूल आदि लक्षण दिखाई देते हैं। रसवह स्रोतस् दुष्टि के कारण अधिकतर दिखाई देनेवाले लक्षण हैं – अरुचि, आस्यवैरस्य, ह्रल्लास, अंगमर्द, ज्वर एवं पाण्डु। पुरीषवह स्रोतस् दुष्टि के कारण सकष्ट एवं सशूल मलप्रवृत्ति, द्रवमलप्रवृत्ति या मलावष्टंभ, अधिक या अल्प मलप्रवृत्ति आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं।

'औषधी विवरण पुस्तिका वर्षा ऋतु २०१८' के इस अंक में हम उपरोक्त वर्णित व्याधियों की चिकित्सा में उपयुक्त कल्पों का विवरण करेंगे।

वह हैं – कपर्दिक (वराटिका) भस्म, कृमिकुठार रस, वातविध्वंस रस, समीरपन्नग, सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी, योगराज गुग्गुल, कुटजारिष्ट एवं संजीवनी गुटिका ।

संपूर्ण देशभर से विविध वैद्यों द्वारा अत्यंत उत्साहपूर्ण प्रतिक्रिया हमें प्राप्त हो रही हैं। सभी विद्वत् वैद्यों को धन्यवाद! औषधी विवरण पुस्तिका के प्रति आपकी प्रतिक्रिया का हमें इंतजार रहेगा। औषध विवरण पुस्तिका वर्षा ऋतु २०१८ के बारे में हमें आपकी राय / प्रतिक्रिया healthcare@sdlindia.com पर लिखित रुप में जरुर भेजें।

धन्यवाद!

कपर्दिक (वराटिका) भस्म

आयुर्वेद प्रकाश २

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. – ०२०००७

कपर्दिक (वराटिका) यह 'साधारण रसवर्ग' में समाविष्ट किया हुआ रसशास्त्रीय द्रव्य है। रसरत्नसमुच्चयने निम्नलिखित सूत्र द्वारा साधारण रस का वर्गीकरण किया है,

कम्पिल्लश्चापरो गौरीपाषाणो नवसादर:।
कपर्दो वह्निजारश्च गिरिसिन्दूरहिङ्गुलौ।।
मृद्वारशृङ्गमित्यष्टौ साधारणरसा: स्मृता।।

र.र.स.३/१२६

वह हैं – कम्पिल्लक, गौरीपाषाण, नवसादर, कपर्दिका, अग्निजार, गिरिसिन्दूर, हिंगुल एवं मृद्वारशृङ्ग।

रासायनिक रुप से कपर्दिक (वराटिका) यह यौगिक कैल्शियम कार्बोनेट ($CaCo_3$) के करीब का समझा जा सकता है। पीताभ (Yellowish) वर्ण की कपर्दिका (वराटिका) जिसके पृष्ठ भाग पर ग्रंथि तथा जो दीर्घवृन्त होती है, वह औषधि हेतु उपयुक्त होती है

और उन्हीं का प्रयोग करना हम आवश्यक मानते हैं। उपरोक्त गुणों से युक्त कपर्दिक (वराटिका) का शोधन कांजी में स्वेदन पद्धति से १ याम (लगभग ३ घंटे) अवधि में किया जाता है।

उसके पश्चात् आयुर्वेद प्रकाश २/३०० में वर्णित पद्धति का प्रयोग कर कपर्दिक (वराटिका) का भस्म प्राप्त किया जाता है। शोधित कपर्दिक (वराटिका) को जलते हुअे कोयले की मद्द से अग्नि दी जाती है। पूरी तरह से फूलने पर कोयले से बाहर निकालकर उसे स्वयं शीत होने के लिए रखा जाता है। महीन चूर्ण अर्थात् कपर्दिक (वराटिका) भस्म बनाने के लिए इन कपर्दिक (वराटिका) पर पेषण कर्म किया जाता है।

कपर्दिक (वराटिका) भस्म के गुणधर्म निम्नप्रकार से हैं,

कपर्दिका हिमा नेत्रहिता स्फोटक्षयापहा।

कर्णस्रावाग्निमान्द्यघ्नी पित्तास्रकफनाशिनी।।

आयुर्वेद प्रकाश २/३०१

यह शीत वीर्यात्मक, पित्त–कफनाशक एवं नेत्रों के लिए हितकर है। यह स्फोट, क्षय, कर्णस्राव एवं अग्निमांद्य में उपयुक्त होता है।

अन्य ग्रंथों के अनुसार कपर्दिक (वराटिका) भस्म कटु – तिक्त रसात्मक, उष्ण, अग्निदीपक, वृष्य एवं वात – कफशामक है, जो परिणामशूल एवं अन्नद्रवाख्य शूल जैसे शूल कम करने में सहायक होता है। साथ ही यह ग्रहणी एवं क्षय में भी उपयुक्त साबित होता है।

कपर्दिक (वराटिका) भस्म का वर्ण **शरदिन्दुनिभं।** र.त.१२/९३, के समान अर्थात् शरद ऋतु के पूर्ण चंद्रमा के समान (अर्थात् सफेद) होना चाहिए।

जैसा की पहले वर्णन किया गया है की, कपर्दिक (वराटिका) भस्म क्षारीय गुणात्मक है, इसलिए यह पित्त के बढे हुए अम्लत्व का शमन करने में सहायक होता है।

क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंहितः। च.चि.२४/११४ इस सूत्र के अनुसार, कपर्दिक (वराटिका) भस्म के क्षार धर्म से विदग्ध पित्त का अम्ल गुण मधुर रस में परिवर्तित होता है।

परिणामशूल का वर्णन करते हुअे कहा गया है, **भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम्।।** मा.नि. शूलादिनिदानम् २६/१६, अर्थात् सेवन किए हुए आहार का पचन होते समय उत्पन्न शूल, परिणामशूल कहलाता है। इसमें कफ एवं पित्त के साथ ही प्रकुपित वात तीव्र शूल उत्पन्न करता है। इस अवस्था में अग्निदीपक, पाचक, शूलशामक एवं वातशामक गुणात्मक होने से कपर्दिक (वराटिका) भस्म का प्रयोग असरदार साबित होता है। परिणामस्वरुप, अग्निदीपन एवं शूलशमन होता है।

जीर्णे जीर्यति अजीर्णे वा यत् शूलमुपजायते।

पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च। मा.नि.शूलादिनिदानम् २६/२१–२२, इस सूत्र द्वारा अन्नद्रवाख्य शूल का वर्णन पाया जाता है। यह सेवन किए आहार के अजीर्णकाल, पच्यमानावस्था या जीर्ण काल के बावजूद कभी भी उत्पन्न हो सकता है। यह पथ्य या अपथ्य, भोजन या अभुज्य अवस्था से संबंधित नहीं है। अग्निदीपक, वातानुलोमक, पाचक एवं शूलशामक होने से कपर्दिक (वराटिका) भस्म अन्नद्रवाख्य शूल से संबंधित उदरशूल, छर्दि एवं अजीर्ण से राहत देने में सहायक होता है।

कपर्दिक (वराटिका) भस्म अपने उष्ण एवं आमपाचक गुणों से कर्णस्राव में भी उपयुक्त होता है।

कृमिकुठार रस

निघण्टु रत्नाकर

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. ०८००२९४

'कृमिकुठार' यह शब्द कृमि एवं कुठार इन दो शब्दों से बना हुआ है। जिस प्रकार से कुठार एक ही प्रहार में पेड़ को काटती है, उसी प्रकार से कृमिकुठार रस कृमि को शीघ्रता से नष्ट करता है। कृमिकुठार रस यह मुख्यतः हिंगुलकल्प है। इसके घटक द्रव्यों का वर्णन निम्नप्रकार से किया है,

कर्पूरं चाष्टभागं च कौटजश्चैकभागिकः।

तत्समानं त्रायमाणमजमोदाविडङ्गकम्।।

हिङ्गुलं विषभागं च तत्समानं च केसरम्। रसचंडांशु

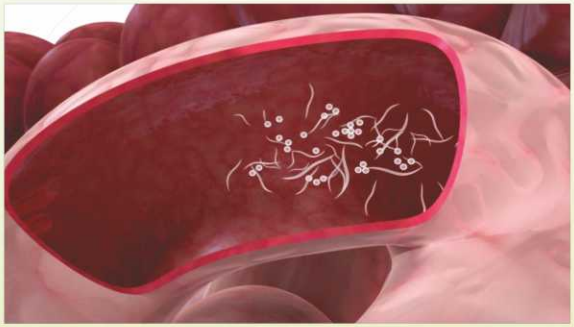

कृमिकुठार रस में कर्पूर (भीमसेनी), कुटज, त्रायमाण, अजमोदा, विडंग, शोधित हिंगुल, शोधित वत्सनाभ, नागकेशर एवं पलाशबीज आदि घटक द्रव्य रहते हैं। इस मिश्रण को क्रमशः भृंगराज स्वरस, आखुपर्णी स्वरस एवं ब्राह्मी स्वरस की भावना दी जाती है।

कृमिकुठार रस का महत्वपूर्ण घटक द्रव्य अर्थात् 'भीमसेनी कर्पूर' ८ भागों में प्रयुक्त किया जाता है। कर्पूर (भीमसेनी) शीत, लघु, लेखन, वृष्य एवं कफ – पित्तनाशक है। कुटज एवं अजमोदा यह वात–कफनाशक होने के साथ ही साथ अग्निदीपक हैं। त्रायमाण कषाय – तिक्त रसात्मक, सर एवं पित्त – कफनाशक है। कृमिकुठार रस में अजमोदा, विडंग, पलाश, भृंगराज एवं आखुपर्णी आदि कृमिघ्न द्रव्य भी उपस्थित रहते हैं। यह द्रव्य कटु रसपाकी, उष्ण वीर्यात्मक, लघु, रुक्ष, अग्निदीपक एवं वात–कफनाशक आदि गुणों से युक्त होते हैं। शोधित हिंगुल अग्निदीपक, आमपाचक, कफ–पित्तनाशक एवं गरविषनाशक है। शोधित वत्सनाभ उष्ण, आमपाचक, स्वेदल एवं व्यवायी है। कृमिकुठार रस में प्रयुक्त ब्राह्मी तिक्त, शीत एवं लघु होने के साथ कुष्ठ, पाण्डु एवं रक्तज विकारों में उपयुक्त है। माधवनिदानकारने कृमि का वर्गीकरण निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता।
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरुद्धभुक् संलभते क्रिमींस्तु।।

मा.नि. क्रिमिनिदानम् ७/४

पहले सेवन किए हुए आहार का पचन हुए बिना आहार सेवन करना, प्रतिदिन एवं नियमित मधुर एवं अम्ल रसात्मक आहार सेवन करना, द्रव आहार का अधिक प्रयोग, पिष्टमय पदार्थ, गुड, विरुद्ध आहार सेवन के साथ ही अव्यायाम एवं दिन में सोना आदि कारणों से कृमि उत्पन्न होते हैं। कृमि के कारण ज्वर, त्वक् वैवर्ण्य, उदरशूल, हृद्रोग, अंगमर्द, भ्रम, अन्नद्वेष एवं अतिसार आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कृमिकुठार रस में उपस्थित अग्निदीपक, आमपाचक, रुक्ष, लघु, उष्ण एवं कृमिघ्न द्रव्य इन लक्षणों से राहत देने में सहायक होते हैं। कृमिकुठार रस कृमिनाशन, दीपन एवं आमपाचन में सहायक होता है।

कुर्यात् कृमिविनाशं च सर्वशः सप्तभिर्दिनैः।। इस सूत्र में किए वर्णन के अनुसार कृमिकुठार रस केवल सात दिनों के लिए निरन्तर देना चाहिए। कुछ दिनों के अन्तर के बाद फिर से इसका प्रयोग किया जा सकता है।

शोधित वत्सनाभ इस विष द्रव्य से युक्त होने के कारण कृमिकुठार रस का प्रयोग लगातर अधिक समय के लिए नहीं करना चाहिए। कृमिकुठार रस का अधिक मात्रा में प्रयोग करने से अत्यधिक स्वेदप्रवृत्ति, हृल्लास एवं हस्त–पाद चिमचिमायन आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिए, इसका प्रयोग उचित सावधानियों के साथ करना चाहिए।

कृमिकुठार रस कृमिरोग की चिकित्सा के लिए अत्यंत प्रभावी कल्प है। कृमिकुठार रस के साथ विडंगारिष्ट या जीरकाद्यरिष्ट का प्रयोग करना अत्यंत उपयुक्त साबित होता है।

वातविध्वंस रस

भारत भैषज्य रत्नाकर ४/६९९९

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. – ०८००२५४

एक प्रभावी शूलघ्न कल्प जो प्रकुपित वात का शमन करता है, वह है 'वातविध्वंस रस'। इसमें शोधित पारद, शोधित गंधक, शोधित वत्सनाभ, शोधित टंकण, शोधित हरिताल, कपर्दिक (वराटिका) भस्म, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली एवं पाषाणभेद आदि घटक द्रव्य उपस्थित रहते हैं। यह सभी घटक द्रव्य समान मात्रा में एकत्रित कर उसे धत्तूरपत्र स्वरस की भावना दी जाती है। वातविध्वंस रस में उपस्थित शोधित टंकण कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, अग्निदीपक एवं वातविकारनाशक है। शोधित वत्सनाभ उष्ण एवं स्वेदल है। कपर्दिक (वराटिका) भस्म अग्निदीपक एवं कफशामक है, तथा पाषाणभेद कषाय, भेदन एवं शूलशामक है। शुण्ठी, पिप्पली, मरिच एवं धत्तूर उष्ण, अग्निदीपक एवं वात–कफनाशक है। शोधित पारद एवं शोधित गंधक को समप्रमाण में एकत्रित खरल कर तैयार कज्जली रसायन, योगवाही एवं जन्तुघ्न है। वातविध्वंस रस सन्निपात,

वातविकार, कफविकार, शैत्यजन्य विकार, अग्निमांद्य, श्वास, संग्रहणी, शूल एवं कास में असरदार है।

'आम' उपस्तंभित वातव्याधि का मुख्य कारण है। यह आम ख–वैगुण्य के कारण संपूर्ण शरीर में फैलता है। वातव्याधि में संकोच, पर्वस्तंभ, शोथ एवं सुप्तता आदि लक्षण दिखाई देते हैं। उष्ण, तीक्ष्ण, आमपाचक एवं अग्निदीपक द्रव्यों के कारण वातविध्वंस रस उपरोक्त वर्णित लक्षणों में असरदार आमपाचक कल्प साबित होता है। साथ ही यह विभिन्न वातव्याधियों से संबंधित अग्निमांद्य की चिकित्सा में भी उपयुक्त है। 'शूल' यह वातव्याधि का महत्त्वपूर्ण लक्षण है। वातविध्वंस रस इस अवस्था में अत्यंत असरदार शूलनाशक साबित होता है। अधिक लाभ हेतु इसका प्रयोग बलारिष्ट जैसे अनुपान के साथ किया जा सकता है।

वर्षा ऋतु में हुए वातप्रकोप के कारण आमवात एवं संधिगत वात सामावस्था से संबंधित संधिशूल एवं संधिशोथ बढ जाता है।

इस अवस्था में आमपाचक, शूलशामक एवं वातानुलोमक कार्य करनेवाला कल्प उपयुक्त साबित होता है। आमपाचक एवं उष्ण द्रव्यों के कारण वातविध्वंस रस शूल कम करने में तथा आमपाचन में उपयुक्त कल्प साबित होता है।

श्वास व्याधि यह आमाशय समुद्भव व्याधि है, जिसमें 'आम' यह मुख्य हेतु होता है। आमपाचक, उष्ण, कफ–वातशामक होने से श्वास से संबंधित उरःशूल, अग्निमांद्य, आध्मान एवं आनाह आदि लक्षणों को कम करने हेतु वातविध्वंस रस का प्रयोग उपयुक्त साबित होता है।

वातविध्वंस रस संग्रहणी, कास एवं अधिक शैत्य के कारण उत्पन्न विकारों में भी उपयुक्त होता है।

समीरपन्नग

आयुर्वेद सारसंग्रह

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. ०८००१७

समीरपन्नग कूपीपक्व पद्धति से तैयार किया गया 'सोमल कल्प' है। इसमें प्रयुक्त घटक द्रव्य हैं – शोधित पारद, शोधित गंधक, शोधित सोमल एवं शोधित हरिताल। समीरपन्नग बनाते समय इन सभी घटक द्रव्यों को एकत्रित कर कुमारी स्वरस की भावना दी जाती है। इसके पश्चात् इस मिश्रण को काचकूपी में डालकर वालुकायंत्र द्वारा क्रमाग्नि दिया जाता है।

समीरपन्नग उसके गुरुत्व के कारण कूपी के तलस्थान पर तैयार मिलता है। इसलिए इसका वर्गीकरण 'तलस्थ कूपीपक्व रसायन' के अंतर्गत किया गया है।

मल्लसिंदूर, पंचसूत रस एवं समीरपन्नग यह सोमल कल्प त्रय (तीन का समूह) है। उनमें से अन्य दो की तुलना में समीरपन्नग सौम्य कल्प है। समीरपन्नग में उपस्थित उग्र एवं उष्ण वीर्यात्मक द्रव्य हैं – शोधित सोमल एवं शोधित हरिताल। शोधित सोमल का विषाक्त गुण शोधित पारद जैसे अन्य द्रव्यों के साथ मर्दन करने पर नष्ट हो जाता है। इसलिए, केवल शोधित सोमल का औषधि रुप में प्रयोग करने के बजाय समीरपन्नग का प्रयोग करना अधिक लाभदायक होता है।

समीरपन्नग में उपस्थित शोधित सोमल कफ – वातशामक, बल्य, रसायन एवं वृष्य होने के साथ श्वास, शीतज्वर एवं पाण्डु आदि जैसे व्याधियों में उपयुक्त होता है। शोधित हरिताल कटु रसात्मक, स्निग्ध, उष्ण, दीपन एवं कफ–पित्तनाशक है। कज्जली के रुप में उपस्थित शोधित पारद एवं शोधित गंधक रसायन, बृंहण एवं योगवाही है। कुमारी वात–कफघ्न, रसायन एवं विषघ्न है।

सन्निपातं कफोन्मादे सन्धिबन्धे कफामये।। नागवल्ल्या दलेनैव भक्षयेद् गुञ्जिकामितम्। इस सूत्र द्वारा समीरपन्नग की फलश्रुति का वर्णन किया गया है। यह सन्निपातज व्याधि, कफज उन्माद एवं कफज संधिविकार में उपयुक्त है। समीरपन्नग उष्ण एवं वात–कफनाशक होने से प्राणवह स्रोतस् में संचित कफ को बाहर निकालने में सहायक होता है। इसलिए, यह कफ – वातज श्वास के साथ ही साथ कास में भी असरदार होता है।

तमक श्वास में प्रकुपित कफ श्वसन संस्था के स्तर पर प्रतिलोम वात को अवरोध उत्पन्न करता है। परिणामस्वरुप, तीव्र श्वास वेग, तमःप्रवेश एवं प्रमोह आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। तमक श्वास में संचित कफ आसानी से बाहर नहीं निकल पाता है। इस

स्थिति का वर्णन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

श्लैष्मण्यमुच्यमाने तु भृशं भवति दु:खित:।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम्।।

मा. नि. हिक्काश्वासनिदानम् १२/३०

इस अवस्था में उष्ण एवं स्रोतोशोधक गुणात्मक होने से लिप्त कफ को बाहर निकालने के लिए समीरपन्नग का प्रयोग लाभदायक साबित होता है। अधिक लाभ हेतु, इसका प्रयोग दशमूलारिष्ट आदि जैसे अनुपान के साथ किया जा सकता है।

समीरपन्नग का प्रयोग कर कफ दुष्टि से संबंधित वातव्याधि की चिकित्सा प्रभावी रुप से की जा सकती है। समीरपन्नग रस आक्षेपक के वेग, कम्प, धनुर्वात एवं अपस्मार आदि की पुनरावृत्ति कम करने में भी सहायक होता है।

समीरपन्नग का वातशामक कार्य प्रसूति में भी सहायक साबित होता है। यहाँ पर यह गर्भाशय संकोच (uterine contraction) बढाने में सहायक होता है। इसलिए, इसका प्रयोग प्रसूति के समय 'आवी' – **प्रसूति समये जायमाण: शूलविशेष:।** उत्पन्न करने के लिए किया जा सकता है।

सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी

योगरत्नाकर १ (राजयक्ष्मा)

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. – ०९००२३४

जैसा की नाम दर्शाता है, सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी में शोधित सुवर्ण के साथ ही शोधित पारद एवं शोधित गंधक उपस्थित रहते हैं। इन तीनों द्रव्यों का प्रयोग समान मात्रा में किया जाता है। ग्रंथ में किए वर्णन के अनुसार पर्पटी निर्माण पद्धति से सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी तैयार की जाती है। सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी में उपस्थित शोधित सुवर्ण स्निग्ध, मधुर, वृष्य, बल्य एवं रसायन है। शोधित पारद एवं शोधित गंधक का प्रयोग कर तैयार की गई कज्जली जन्तुघ्न एवं योगवाही है।

सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी पाचक, दीपक, रस – रक्तादि धातुवर्धक, वृष्य, योगवाही, जन्तुघ्न, त्रिदोषनाशक, बल्य एवं रसायन है।

सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी क्षीण व्यक्ति तथा अतिसार, श्वास, अग्निमांद्य, पाण्डु, प्रमेह, चिरकारी ज्वर एवं ग्रहणी से पीडित व्यक्तियों में असरदार साबित होती है। यह सुरक्षित औषधि होने से वृद्ध व्यक्ति, बालक एवं स्त्रियों में भी उपयुक्त है।

पर्पटी कल्प का विघटन ग्रहणी अवयव एवं उसके आगे जाकर होने से मुख्यत: पर्पटी कल्प ग्रहणी व्याधि की चिकित्सा में लाभदायी साबित होते हैं।

पंचामृत पर्पटी एवं रस पर्पटी आदि अन्य सभी पर्पटी कल्पों की तुलना में सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी सर्वोत्तम मानी जाती है। यह द्रवमलप्रवृत्ति, कार्श्य एवं दौर्बल्य आदि जैसे लक्षणों को कम कर ग्रहणी की जीर्ण अवस्था में सहायक है।

जन्तुघ्न, बल्य एवं रसायन होने से सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी अतिसार एवं प्रवाहिका की जीर्णावस्था में असरदार साबित होती है। इसका बल्य कार्य संग्रहणी में भी दिखाई देता है। यह कास, श्वास तथा सप्तधातुपोषण कार्य से जीर्ण अतिसार से संबंधित पाण्डु में भी सहायक है।

सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी विशेषत: आंत्रज राजयक्ष्मा में और उससे संबंधित कार्श्य, दौर्बल्य, पाण्डुत्व, अतिस्वेद एवं मंद ज्वर आदि लक्षणों से राहत देने में सहायक होती है। इस अवस्था में यह स्रोतोरोध कम कर तथा रस संवहन सुधारकर रूग्ण में सहायक होती है। सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी प्रसूता स्त्री या बालकों में उत्पन्न क्षय में भी उपयुक्त साबित होती है।

यह राजयक्ष्मा में उपस्थित दोष दुष्टि कम करने में सहायक

होती है, तथा धातुपरिपोषण सुधारती है।

पंचामृत पर्पटी के समान सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी शोधन कार्य नहीं करती। सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी विषारनाशक एवं स्तंभक कार्य उत्तम रीति से करती है।

सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी दूषित पित्त का अम्लत्व एवं द्रवत्व कम कर पित्त को प्राकृत स्थिति में बरकरार रखने में सहायक होती है।

सुवर्ण (स्वर्ण) पर्पटी का अल्प मात्रा में तक्र के साथ सेवन करनेपर जिन व्यक्तियों में **'मुहुर्बद्धम् मुहुर्द्रवम्'** मलप्रवृत्ति की आदत होती है, वह कालांतर से कम होने में सहायता होती है।

योगराज गुग्गुल

भारत भैषज्य रत्नाकर ४/५७८०

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. – ०४०००८४

वातव्याधि की सामावस्था में विशेषत: उपयुक्त गुग्गुलकल्प है, 'योगराज गुग्गुल'। यह कटु रसपाकी, उष्ण वीर्यात्मक, अग्निदीपक एवं पाचक द्रव्यों से युक्त है। वह द्रव्य हैं – शुण्ठी, पिप्पलीमूल, पिप्पली, चव्य, चित्रक, शोधित हिंगु, अजमोदा, सर्षप, जीरकद्वय (श्वेत एवं कृष्ण), रेणुकबीज, इंद्रयव, पाठा, विडंग, गजपिप्पली, कटुका, अतिविषा, भारंगी, वचा एवं मूर्वा प्रत्येक समप्रमाण में। त्रिफला (हरीतकी, बिभीतक एवं आमलकी) उपरोक्त वर्णित बीस द्रव्यों की कुल तुलना में दुगनी मात्रा में अर्थात् ४० भागों में समाविष्ट की गयी है। गुग्गुल सभी द्रव्यों की कुल तुलना में ६० भागों में उपस्थित है। श्री धूतपापेश्वर लि. द्वारा निर्मित योगराज गुग्गुल की विशेषता है, 'दशमूल विशेष शोधित गुग्गुल'। गुग्गुल का त्रिफला क्वाथ में सामान्य शोधन करने के पश्चात् दशमूल के गुणों को सम्मिलित करने हेतु इसका फिर से दशमूल क्वाथ में विशेष शोधन किया जाता है। दशमूल विशेष शोधित गुग्गुल तिक्त – कषाय – कटु रसात्मक, उष्ण, रुक्ष, लघु, सूक्ष्म, अग्निदीपक, बल्य एवं रसायन है। त्रिफला कफ–पित्तशामक, अग्निदीपक एवं रुचिकर है। योगराज गुग्गुल में उपस्थित त्रिफला यह गुग्गुल का उष्णत्व एवं तीक्ष्णत्व कम करने में सहायक होने के साथ उसकी कार्मुकता बढाने में भी सहायक होता है।

योगराज गुग्गुल का वर्णन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनः।
मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते।।

भा. भै. र. ४/५७८०

यह त्रिदोषघ्न होने के साथ ही साथ रसायन भी है। योगराज गुग्गुल का सेवन करते समय मैथुन, आहार एवं पान संबंधित पालन करने आवश्यक नियमों का बंधन नहीं है। यह वातविकार, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, वातरक्त, भगंदर, उदावर्त, गुल्म, अग्निमांद्य एवं अरोचक आदि जैसी विभिन्न व्याधियों में असरदार है।

वातव्याधि की दो अवस्थाएँ होती हैं– सामावस्था एवं निरामावस्था। वातव्याधि की सामावस्था का मुख्य हेतु होता है, अपाचित घटक अर्थात् 'आम'। इस अवस्था में उष्ण वीर्य, अग्निदीपक, आमपाचक, शूलनाशक एवं शोथनाशक आदि गुणों से युक्त कल्प उपयुक्त साबित होता है। चित्रक, जीरक (श्वेत एवं कृष्ण), शुण्ठी एवं अजमोदा आदि घटक द्रव्य योगराज गुग्गुल को वातव्याधि की सामावस्था की चिकित्सा में असरदार बनाते हैं। अधिक लाभ एवं जल्द परिणाम हेतु इसका प्रयोग महारास्नादि क्वाथ के साथ किया जा सकता है।

वातहर गुण के कारण योगराज गुग्गुल वातवाहिनी का क्षोभ कम करने में सहायक होता है। साथ ही यह उष्ण, दीपक, पाचक एवं वातानुलोमक होने से आध्मान एवं आनाह में वातानुलोमन करने में भी सहायक होता है।

योगराज गुग्गुल सूक्ष्म एवं स्रोतोरोधनाशक होने से रक्तधातु के स्तर पर संचित विषार को बाहर निकालने में मददगार होता है। इसलिए, वातरक्त में इसका प्रयोग प्रभावी रुप से किया जा सकता है।

योगराज गुग्गुल का प्रयोग दशमूलारिष्ट, महारास्नादि काढा एवं अमृतारिष्ट आदि के साथ किया जा सकता है।

कुटजारिष्ट

भैषज्य रत्नावली (अतिसार) ७/१७४ – १७७

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. १००००८

'कुटज' सर्वप्रथम उक्त एवं मात्रा में सबसे अधिक घटक द्रव्य होने के कारण इस द्रव कल्प अर्थात् अरिष्ट को कुटजारिष्ट यह नाम दिया गया है। साथ ही कुटजारिष्ट में द्राक्षा ५ भाग, गंभारीमूल १ भाग, गुड यथावश्यक, मधुक पुष्प १ भाग एवं धातकी पुष्प २ भाग आदि अन्य घटक द्रव्य उपस्थित होने के साथ कुटज त्वक् १० भाग में प्रयुक्त किया गया है। भावप्रकाशकारने कुटज के गुणों का वर्णन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

कुटजः कटुको रुक्षो दीपनस्तुवरो हिमः।

अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णाऽऽमकुष्ठनुत्।

भा.प्र. गुडूच्यादिवर्ग १९८

कुटज कटु – कषाय रसात्मक, शीत, रुक्ष एवं अग्निदीपक है। यह अर्श, अतिसार, पित्त – रक्त – कफदुष्टि, तृष्णा, आमावस्था एवं कुष्ठ में उपयुक्त है। चरकाचार्यजीने **कुटजत्वक् श्लेष्मपित्तरक्तसांग्राहिक उपशोषणानां (श्रेष्ठम्)।** च.सू. २५/४० इस सूत्र का वर्णन किया है। अर्थात् कुटज त्वक् उत्तम कफ–पित्त–रक्तशामक, संग्राही एवं स्रावशोषक है। कुटजारिष्ट में उपस्थित गंभारीमूल कषाय – तिक्त – मधुर, उष्ण, गुरु, अग्निदीपक एवं आमपाचक होने के साथ तृष्णा, आम, उदरशूल, अर्श एवं ज्वर में उपयुक्त है।

भैषज्य रत्नावली में कुटजारिष्ट की कार्मुकता का वर्णन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

ज्वरान् प्रशमयेत् सर्वान् कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम्।

दुर्वारां ग्रहणीं हन्ति रक्तातीसारमुल्बणम्।

भै.र.अतिसारचिकित्सा ७/१७७

कुटजारिष्ट सभी प्रकार के ज्वर, ग्रहणी एवं रक्तातिसार में असरदार है। यह अग्निदीपन के लिए भी सहायक है। अति गुरु – स्निग्ध – रुक्ष – द्रव – शीत – उष्ण – स्थूल आहार सेवन के साथ ही साथ विरुद्धाशन, अध्यशन, अजीर्णभोजन एवं विषमभोजन जैसी आहार की आदतों के कारण अतिसार उत्पन्न होता है। स्नेहन, स्वेदन, वमन एवं विरेचन आदि का अतियोग या मिथ्यायोग, दुष्ट जलपान, ऋतु विपर्यय के साथ ही साथ शोक एवं भय आदि जैसे मानसिक हेतुओं के कारण अतिसार उत्पन्न होता है। अतिसार में उदरशूल, अग्निमांद्य, अजीर्ण एवं सबसे महत्वपूर्ण द्रवमलप्रवृत्ति आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कुटज इस स्तंभन द्रव्य से युक्त होने के कारण कुटजारिष्ट अतिसार की चिकित्सा में प्रभावी औषधि साबित होती है। कुटजारिष्ट अपने दीपक, पाचक एवं वातानुलोमक गुणों से अग्निदीपन, आमपाचन, ग्राही एवं शूलशमन कार्य के लिए सहायक होता है। ग्रहणी व्याधि में अतिसार के समान लक्षण दिखाई देते हैं, जैसे की 'द्रवमलप्रवृत्ति'। अतिसार से संबंधित अग्निमांद्य को ध्यान में लिए बिना एवं उसकी पूर्णतः चिकित्सा हुए बिना अपथ्य शुरु करने से ग्रहणी दूषित होती है।

कुटजारिष्ट द्रवमलप्रवृत्ति को नियंत्रित करने में तो सहायक होता ही है, बल्कि साथ ही में अग्नि को भी सुधारता है। यह ग्रहणी अवयव का बल बढाने में भी सहायक होता है।

कुटजारिष्ट का प्रयोग कर संग्रहणी से संबंधित अग्निमांद्य की चिकित्सा प्रभावी रुप से की जा सकती है। यहाँ पर कुटजारिष्ट पाचक पित्त का सुयोग्य स्राव करने में सहायक होता है। यह अन्नपचन एवं शोषण क्रिया भी सुधारता है।

कुटजारिष्ट यकृत् विद्रधि एवं ग्रहणी से संबंधित कोष्ठशूल में भी उपयुक्त साबित होता है।

अधिक लाभ हेतु कुटजारिष्ट का प्रयोग रस पर्पटी, अग्नितुंडी वटी एवं आनंदभैरव रस आदि के साथ किया जा सकता है।

कृमिज अतिसार में, कुटजारिष्ट का प्रयोग कृमिकुठार रस के साथ अनुपान रुप में किए जाने से अधिक लाभ मिलता है।

संजीवनी गुटिका

भारत भैषज्य रत्नाकर ५/८१२५

एस्. डी. एस्. मोनोग्राफ क्र. – ०५००१०४

संजीवनी इस शब्द का अर्थ है, जो मृत्यु का पराजय कर या रोककर जीवन की रक्षा कर सके। **वटी सञ्जीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम्।** भा. भै. र. ५/८१२५ इस सूत्र में भी संजीवनी गुटिका के बारे में यहीं वर्णन मिलता है।

निम्नलिखित सूत्र द्वारा संजीवनी गुटिका के घटक द्रव्यों का वर्णन किया है,

विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकम्।

वचा गुडूची भल्लातं विषं चात्र योजयेत्।।

एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत्। भा. भै. र. ५/८१२५

संजीवनी गुटिका में विडंग, शुण्ठी, पिप्पली, हरीतकी, बिभीतक, आमलकी, वचा, गुडूची, शोधित भल्लातक एवं शोधित वत्सनाभ आदि घटक द्रव्य उपस्थित हैं। इन सभी घटक द्रव्यों को समान मात्रा में एकत्रित कर गोमूत्र की भावना दी जाती है। संजीवनी गुटिका में उपस्थित शोधित भल्लातक उष्ण, अग्निदीपक, पाचक, स्निग्ध एवं कफ–वातशामक है। शोधित वत्सनाभ उष्ण, तीक्ष्ण एवं शूलघ्न है। गोमूत्र अग्निदीपक, पाचक, कोष्ठशोधक एवं कृमिघ्न है। विडंग, शुण्ठी, पिप्पली एवं हरीतकी आदि अन्य घटक द्रव्य अग्निदीपक, पाचक एवं शूलघ्न है।

संजीवनी गुटिका अग्निमांद्य, अजीर्ण, प्रवाहिका, कृमि एवं विसूचिका आदि में असरदार है। सामान्यत: जिह्वालौल्य के कारण अधिकतर मात्रा में आहार सेवन करने से अजीर्ण उत्पन्न होता है। अजीर्ण में उदरशूल, अपचन, अम्लोद्गार एवं द्रवमल प्रवृत्ति आदि लक्षण दिखाई देते हैं। संजीवनी गुटिका उष्ण, अग्निदीपक एवं पाचक घटक द्रव्यों से युक्त होने से उसका प्रयोग अजीर्ण में आमपाचन, अग्निदीपन के साथ वातानुलोमन में भी सहायक होता है।

अजीर्ण की चिकित्सा पूरी तरह से न होने पर भी अपथ्यकर आहार निरन्तर सेवन करते रहने से विसूचिका एवं अलसक आदि उत्पन्न होते हैं।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिल:। मा. नि. अग्निमान्द्यादिनिदानम् ६/१६ इस सूत्र द्वारा विसूचिका व्याधि का वर्णन किया गया है, जिसका अर्थ है, विसूचिका में वातप्रकोप के कारण सूचीवत् चुभन के समान वेदनाएँ होती है। विसूचिका में छर्दि, तृष्णा, उदरशूल, दाह, हृद् शूल एवं अतिसार आदि अन्य लक्षण भी दिखाई देते हैं। इस अवस्था में संजीवनी गुटिका विषारनाशन, आमपाचन एवं शूलशमन में सहायक होती है। कृमिजन्य अतिसार में संजीवनी गुटिका का प्रयोग प्रभावी रुप से किया जा सकता है। अधिक लाभ हेतु इसका प्रयोग विडंगारिष्ट के साथ किया जा सकता है।

कास–श्वास से संबंधित आम की चिकित्सा संजीवनी गुटिका का प्रयोग कर की जा सकती है।

संजीवनी गुटिका की मात्रा का वर्णन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया है,

एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां प्रदापयेत्।

तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्र: सान्निपातिके।।

भा. भै. र. ५/८१२

संजीवनी गुटिका की १ गोली का प्रयोग अजीर्ण एवं गुल्म में, दो गोलियाँ विसूचिका में एवं सर्पदंश में तीन गोलियाँ प्रयुक्त करनी चाहिए। सन्निपात में संजीवनी गुटिका की चार गोलियाँ एक साथ प्रयुक्त करनी चाहिए। ऐसा भारत भैषज्य रत्नाकर में कथित किया गया है।

केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिये
© All Copy Rights Reserved

श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड

१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई – ४००००४. • फोन नं.:+९१-२२-६२३४ ६३००, २३८२ ५८८८ • ई-मेल: healthcare@sdlindia.com • वेब: www.sdlindia.com

AVP-H/SDL-VR/VARSHA/S/0518